दक्षिण एशियाई शैक्षिक परिदृश्य

शिक्षाविद् जलालुद्दीन से राघवेन्द्र प्रपन्न की बातचीत

दक्षिण एशिया में शिक्षा के प्रसार पर केन्द्रित इस चर्चा में शिक्षाविद् जलालुद्दीन मानते हैं कि शिक्षा का संबंध लोकतांत्रिक प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है । दक्षिण एशिया के जिन देशों में लोकतांत्रिकरण की यह प्रक्रिया चली है वहां शिक्षा के प्रचार प्रसार के लिए अपेक्षाकृत अनुकूल माहौल बना है और जिन देशों में यह प्रक्रिया धीमी रही है वहां प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की प्रक्रिया भी धीमी रही है । जलालुद्दीन आर्थिक विकास एवं आर्थिक़ सुधार को भी शैक्षिक प्रसार में एक सहायक कारक मानते हैं । प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता एवं प्रसार के मुद्दों को वे अलग-अलग करके नहीं देखते बल्कि इन्हें परस्पर सम्बद्ध मानते हैं । उनकेअनुसार गुणवत्ता एवं प्रसार के बीच कोई अग्र-पश्च का रिश्ता नहीं है । उनका मानना है कि इस क्षेत्र में मूल्य प्रभावोत्पादकता (कोस्ट इफेक्टिवनेस) का कोई विकल्प नहीं है। इस बातचीत में उन्होंने शैक्षिक विकेन्द्रीकरण, जनसहभागिता, पाठ्यचर्या और विद्यार्थी-शिक्षक संबंधों पर भी अपने दीर्घ अनुभवजन्य विचार व्यक्त किये हैं । उनकी यह शिकायत भी है कि दक्षिण एशिया में शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाएं बहुत संकीर्णतावादी, पुरातनपंथी एवं रूढ़ हैं ।

राघवेन्द्र : *अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियों व संस्थानों द्वारा जारी की गई रपटों तथा स्वैच्छिक स्वतंत्र अध्ययनों से यह जाहिर होता है कि पूरी दुनिया में सब-सहारा अफ्रीका को छोड़कर दक्षिण एशियाई प्राथमिक शिक्षा सभी स्तरों पर सभी मायनों में पिछड़ी हुई है। शिक्षा में दक्षिण एशिया का यह पिछड़ापन परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों ही स्तरों पर है । अध्ययन यह बतलाते हैं कि दक्षिण एशिया में प्राथमिक शिक्षा को जो स्थितियां एवं कारक प्रभावित कर रहे हैं, वे हैं - औपनिवेशिक विरासत का ढोया जाना, समाज में व्याप्त पितृ सत्तात्मकता, लैंगिक असमानता, शिक्षा का अभिजात्यीय चरित्र एवं सटीक शिक्षणशास्त्रीय समझ का अभाव। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न पहलकदमियों के सिलसिले में दक्षिण एशियाई देशों के अधिसंख्य के साथ आपका वास्ता एवं काम रहा है। विशेषतौर पर आप बांग्लादेश की प्राथमिक शिक्षा से लम्बे और गहरे तौर पर जुड़े रहे हैं। प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में दक्षिण एशियाई देशों के साथ अपने लम्बे अनुभव के आधार पर इस क्षेत्र विशेष के शैक्षिक पिछड़ेपन को आप किस तरह देखते हैं ?*

जलालुद्दीन : पिछले 100 सालों का इतिहास अगर हम देखें तो सामान्य तौर पर यह कह सकते हैं कि हमारे यहां सामंती प्रभाव एवं प्रवृत्तियां खत्म नहीं हुई हैं। औपनिवेशिक समाज के प्रतीक एवं चिह्न यहां देखने को बहुतायत में मिलते हैं । पर भारत की अपेक्षा पाकिस्तान तथा बांग्लादेश में इसका प्रभाव ज्यादा रूढ़ दिखाई देता है। बांग्लादेश में पढ़े-लिखे मध्यवर्ग में भी इस सामंती रिश्ते की मौजूदगी देखी जा सकती है। वहां उच्च मध्यवर्ग के पास नौकरों की संख्या 3-4 तक होती है और उनके साथ उनका बर्ताव भी सामंती मानस की ओर इशारा करता है। अभिजात्य व पढ़ा-लिखा मध्यवर्ग एक तरफ तो अपने नौकरों से सामन्ती व्यवहार करता है और दूसरी तरफ अपने ड्राइंगरूम में बैठकर रवीन्द्रनाथ की पुस्तक तक पढ़ता है । इस तरह का विभाजित व्यवहार सामंती मानस का संकेत देता है। एक लिहाज से देखें तो यह कहा जा सकता है कि शिक्षा का असर पाकिस्तान या बांग्लादेश में वैसा देखने को नहीं मिलता जैसा कि हिन्दुस्तान में देखने को मिलता है। लेकिन जब मैं श्रीलंका गया तो वहां का वातावरण कुछ भिन्न था। मेरी समझ में वहां जो पुरानी बौद्ध संस्कृति की परंपरा है एवं उसका जो प्रभाव है उसकी वजह से वहां शिक्षा का एक सकारात्मक रंग देखने को मिला। बर्मा में भी बौद्ध संस्कृति का यह पहलू और उसका असर कमोवेश इस रूप में देखने को मिलता है। नेपाल में काठमांडू के आस-पास

मध्यवर्ग तो दिखाई देता है पर वहां जनजातीय संस्कृति की वजह से समाज में एक प्रकार की समानता का भाव दिखाई देता है। हमने अपने अध्ययन में पाया है कि समुद्रतटीय एवं पर्वतीय क्षेत्रों में साक्षरता की स्थिति मैदानी इलाकों से बेहतर है। समुद्रतटीय प्रदेशों में साक्षरता एवं शिक्षा की बेहतर स्थिति का कारण तो समझ में आता है क्योंकि पहले वे व्यापार के केन्द्र हुआ करते थे। किन्तु पर्वतीय क्षेत्रों में साक्षरता की बेहतर स्थिति थोड़ा आश्चर्य में डालती है। मेरे ख्याल से भूमि सुधार का शिक्षा के संदर्भ में सकारात्मक असर होता है। यह तथ्य उस मान्यता को चुनौती देता हुआ नजर आता है जिसके तहत आधुनिकता को ही शिक्षा के लिए आवश्यक कारक बताया जाता है।

शिक्षा का संबंध लोकतांत्रिक प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। दक्षिण एशिया के जिन देशों में यह प्रक्रिया चली है वहां शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए अपेक्षाकृत अनुकूल माहौल बना है और जिन देशों में यह प्रक्रिया धीमी रही है, वहां प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की प्रक्रिया भी धीमी रही है। एक अन्य कारक को इस संबंध में देखने की आवश्यकता है। वह कारक है अर्थव्यवस्था, आर्थिक विकास एवं आर्थिक सुधार का । सब-सहारा अफ्रीका को छोड़कर दक्षिण एशिया, प्राथमिक शिक्षा के अन्य सभी क्षेत्रों के मुकाबले सभी स्तरों पर पिछड़ा हुआ है। इस पिछड़ेपन की जड़ें औपनिवेशिक एवं सामंती गठजोड़ से उभरी सामाजिक-राजनैतिक अर्थव्यवस्था में है। पिछले सौ सालों का इतिहास यह बतलाता है कि दक्षिण एशियाई देशों को इस स्थिति से उबरने में अभी वक्त लगेगा। इस स्थिति से उबरने के लिए जो चीज कारगर हो सकती है, वह है राजनैतिक लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया । अत: इस प्रक्रिया को ठीक से चलाया जाना चाहिए क्योंकि प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण इस प्रक्रिया से गहरे तौर पर जुड़ा हुआ है। हालांकि बड़े देशों के बनिस्पत छोटे देशों में सामंती बनाम लोकतंत्रीकरण का मुद्दा या समस्या एवं इसकी लड़ाई उस रूप में नहीं है जितना कि इस क्षेत्र के बड़े देशों में यह व्याप्त है । एक लिहाज से यह माना जा सकता है कि दक्षिण एशिया के अन्य देशों के मुकाबले भारत में राजनैतिक लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया एक हद तक चली है। पर दक्षिण एशिया के अन्य देशों में यह प्रक्रिया वांछित रफ्तार पकड़ नहीं पाई है। बांग्लादेश में यह प्रक्रिया अभी सीमित रूप में है पर वहां इसकी संभावना नजर आती है। इस लिहाज से पाकिस्तान की स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती। ऐसा नहीं है कि राजनैतिक लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया कोई अचानक से आ जाएगी। इसमें जरूरी है कि सांमती एवं पुरातनपंथी संरचनाओं एवं संस्थाओं के साथ लोकतांत्रिक संस्थाओं एवं संरचनाओं का संघर्ष हो। इस पूरी प्रक्रिया में जनसंघर्ष की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया की एक प्रमुख विशेषता होती है गतिशीलता। भारत में इस क्षेत्र के अन्य देशों के मुकाबले यह गतिशीलता एक हद तक देखी जा सकती है। पहले यह गतिशीलता अकुशल एवं अर्द्धकुशल मजदूरी के क्षेत्र में देखी जा रही थी। पर अब तकनीकी क्षेत्रों में भी यह देखी जा रही है। इसे आप भूमंडलीकरण का असर कहें अथवा नई बाजार अर्थव्यवस्था का प्रभाव, पिछले कुछ सालों से यह देखा जा रहा है कि भारतीय अर्थव्यवस्था, विश्व अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा एवं उसमें अपनी जगह बनाने की जद्दोजहद में है। भारतीय अर्थव्यवस्था दक्षिण एशिया में मुख्यधारा की अर्थव्यवस्था के रूप में उभरने वाली है। अन्य दक्षिण एशियाई देशों की अर्थव्यवस्था इसकी परिधि में होगी। क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था, जिसके लिए सार्क देशों का संगठन सामने आया था, अगर विकसित होती है और उनमें आपसी निर्भरता एवं अन्त:संबंध विकसित होते हैं तब इन देशों में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में और विकास होगा। क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था के उभार के प्रभाव से गैर प्रगतिशील पुरातनपंथी, लोकतांत्रिक ताकतों का प्रभाव भी घटेगा, जिसका लाभ प्राथमिक शिक्षा को मिलेगा। पिछले कुछ सालों का अनुभव यह बतलाता है कि राजनैतिक लोकतंत्रीकरण तथा अर्थव्यवस्था में सुधार का सकारात्मक प्रभाव प्राथमिक शिक्षा पर पड़ा है। पिछले दस सालों से जो नए लक्षण उभर कर सामने आ रहे हैं यह संकेत करते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में अब केन्द्रीय शासन की पहलकदमी सिमटती जा रही है और राज्यों की पहलकदमी और इसकी आवश्यकता निरंतर बढ़ती जा रही है। प्राथमिक शिक्षा के लिहाज से इसे एक अच्छा संकेत माना जा सकता है। जैसे-जैसे प्राथमिक शिक्षा में केन्द्रीयता घटती चली जायेगी, विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति अपनी जड़ें जमाने लगेंगी, योजना बनाने तथा उसको जमीन पर उतारने में लोगों की भागीदारी बढ़ती जाएगी वैसे-वैसे प्राथमिक शिक्षा के प्रसार तथा इसकी गुणवत्ता में इसका सकारात्मक प्रभाव नजर आने लगेगा।

राघवेन्द्र : *कई शिक्षाविदों का मानना है कि प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण में जो औपचारिकेतर धाराएं स्थापित की जा रही हैं उनका मुख्य सरोकार सिर्फ संख्यात्मक या फिर परिमाणात्मक पक्ष तक ही सीमित है। इसे कुछ इस प्रकार कह सकते हैं कि उनका सारा जोर केवल इसी बात पर आकर खत्म हो जाता है कि स्कूल न आने वाले ज्यादा से ज्यादा बच्चों को स्कूल लाया जा सके और उन्हें बैठाया रखा जा सके। पर उन्हें किस प्रकार गुणवत्ता वाली प्राथमिक शिक्षा मिले, इस बात को सिरे से नजरअंदाज कर दिया जाता है। और इस प्रकार गुणवत्ता अभी प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का एजेंडा नहीं बन सका है । सैद्धांतिक स्तर पर वह भी दस्तावेज के हाशिए पर ही गुणवत्ता का मुद्दा देखा जा सकता है। बाकी योजनाकारों के मन में, योजना का पालन करने वाले वाले तंत्र में, ऊंच-नीच के पदानुक्रम में बैठे लोगों के जेहन में गुणवत्ता का मुद्दा कहीं नहीं है। वे मानते हैं सभी बच्चे केवल स्कूल पहुंच भर जाएं तो इतने में उनका कार्य समाप्त हो जाता है । दूसरी तरफ सरकारी, गैर-सरकारी संगठनों एवं स्वैच्छिक प्रयासों के जरिए प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण में लगे लोगों में ऐसे लोगों की भी अच्छी संख्या है जो यह मानते हैं कि प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण में पहला मुद्दा तो परिमाण यानी संख्या का ही है और दूसरा मुद्दा है गुणवत्ता। पहले परिमाणात्मक स्तर पर निपट लेने के बाद गुणात्मक स्तर को भी सम्बोधित किया जाना चाहिए। इनके हिसाब से गुणवत्ता एवं परिमाण का मुद्दा इस रूप में तो अलग-अलग है जिसे दो चरणों में बांट कर पूरा किया जा सकता है। प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण में यह विवाद काफी पुराना भी है और विवादित तथा भ्रामक भी। आप प्राथमिक शिक्षा विषयक विमर्श में व्याप्त परिमाणात्मक बनाम गुणात्मक शिक्षा के तथाकथित द्वन्द्वात्मक रिश्ते को किस प्रकार देखते हैं ?*

जलालुद्दीन : प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता एवं प्रसार के मुद्दे को हम अलग-अलग करके नहीं देख सकते बल्कि यह साथ-साथ चलने वाली चीज है । गुणवत्ता एवं प्रसार के बीच कोई अग्र-पश्च का रिश्ता है ऐसा मैं नहीं मानता । यानी मैं इस बात से कोई इत्तफाक नहीं रखता कि प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण करना है तो पहले हम प्रसार वाले यानी संख्यात्मक पहलू को ही संबोधित कर सकते हैं और गुणवत्ता के मुद्दे को एक निश्चित चरण अथवा स्थिति के बाद ही उठाया जा सकता है। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में ऐसा विभक्तीकरण मेरे ख्याल से एक कृत्रिम विभाजन है जिससे प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का लक्ष्य हासिल होने में कोई सुविधा नहीं होगी बल्कि ऐसी समझ इस लक्ष्य की प्राप्ति में उलझन, बाधा एवं भटकाव ही पैदा करेगी । मैं तो यह कहूंगा कि प्राथमिक शिक्षा के प्रसार-विस्तार की बात करने से पहले शिक्षा में गुणवत्ता की बात कही एवं की जानी चाहिए। प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के संदर्भ में लगाए जाने वाले शिक्षकों अथवा वैकल्पिक शिक्षा के संदर्भ में भी मैं यही कहना चाहूंगा कि ऐसा करते हुए गुणवत्ता वाली शिक्षा, जनभागीदारी की बात आप छोड़ नहीं सकते। हां, वैकल्पिक शिक्षा के सन्दर्भ में संसाधनों की कमी मानी जा सकती है। संसाधनों की कमी को दूर करने में अभी समय लग सकता है पर यह कहे जाने की आवश्यकता है कि हमें समान स्कूल और समान सुविधा की आवश्यकता है। जब तक पूरे संसाधन नहीं मिल जाते तब तक शैक्षिक गुणवत्ता के सन्दर्भ में यह बात पहचानी जानी चाहिए कि इस स्थिति में बच्चों के लिए हम संभवत: इन बातों को कर सकते हैं। लेकिन समान गुणवत्ता वाली शिक्षा को भविष्य में प्राप्त करने के लिए स्पष्ट नीति एवं उसको क्रियान्वित करने के लिए ठोस प्रावधान होने चाहिए। तभी आप कह सकते हैं कि वैकल्पिक स्कूल में हम गुणवत्ता के मुद्दे को साथ-साथ लेकर चल रहे हैं । भारत में ऐसे राज्यों की अच्छी संख्या है जो अपने यहां पैरा शिक्षकों को नियुक्त कर रहे हैं। पर उनमें गुजरात ही एक ऐसा राज्य है जहां उन्हीं लोगों को ग्राम शिक्षक के रूप में नियुक्त किया जा रहा है जो अकादमिक रूप से योग्य हैं। राजस्थान, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल एवं आन्ध्र प्रदेश में ऐसा देखने को नहीं मिलता। वैकल्पिक शिक्षा को खड़ा करने के संदर्भ में केवल संसाधनों की उपलब्धता ही पर्याप्त नहीं है बल्कि इसके लिए जागरूकता भी चाहिए और जन आन्दोलन भी चाहिए। मीडिया का भी इसमें समर्थन जरूरी होता है । और उसके द्वारा समय-समय पर सवाल भी उठाया जाना चाहिए। जब तक यह चौकसी नहीं दिखाई देती तब तक हम गरीब आबादी के उन 20-30 प्रतिशत लोगों के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा दिलवा पाने में सफल नहीं हो सकते जिनके बच्चे अभी स्कूल नहीं जा पा रहे हैं । ऐसे बच्चों के लिए यही व्यवस्था है पर अगर ऐसे स्कूलों के पीछे जवाबदेही की भावना न रहे तो यह बड़े ही अफसोस की बात है।

ध्यान देने की बात है कि इस क्षेत्र में मूल्य प्रभावोत्पादकता (कोस्ट इफेक्टिवनेस) का कोई विकल्प नहीं है। गुणवत्ता का कोई तयशुदा ऐसा मानक होना चाहिए जो सबके लिए हो। गुणवत्ता के मान का निर्धारण राज्य स्तर पर, जिला स्तर पर होना चाहिए। मेरा मानना तो यह है कि शिक्षा के अधिकार के साथ-साथ समानता का, समान गुणवत्ता का तथा बच्चों की रूचि के अवसरों का सवाल भी आना चाहिए था।

राघवेन्द्र : *शिक्षाविदों के विचारों और अनेक अध्ययनों के आधार पर (क) विकेन्द्रीकरण (ख) जनसहभागिता के अभाव को, पिछले पचास सालों की शैक्षिक असफलता के मुख्य कारणों में गिना जा रहा है। इस आधार पर स्वैच्छिक एवं गैर-सरकारी संगठनों सहित सरकारी स्तर पर किए जाने वाले विमर्शों में विकेन्द्रीकरण एवं जनसहभागिता की बात की जा रही है। शिक्षा में विकेन्द्रीकरण एवं जनसहभागिता की भूमिका को लेकर आपकी क्या राय है ?*

जलालुद्दीन : मुझे ऐसा लगता है कि अभी शिक्षा एवं शिक्षकों पर जो विमर्श चल रहा है वह आज से 15-20 साल पहले नहीं चला करता था। लोग आज इसे बहुत आलोचनात्मक तरीके से देख रहे हैं। इस लिहाज से एक स्तर पर यह जाना जा सकता है कि शिक्षा-विमर्श एवं शिक्षा संबंधी चेतना में एक प्रकार का विकास हुआ है। इसके साथ ही शिक्षा की प्रक्रिया से जनता को जोड़ने, स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने, प्राथमिक शिक्षा के प्रबंधन को स्थानीय स्तर पर विकेन्द्रीकृत करने की भी बात की जा रही है। स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने, योजना बनाने तथा उसका क्रियान्वयन करने की बात भी की जा रही है। मैं यह भी देख रहा हूँ कि आगामी 4-5 वर्षों में एक और बात आने जा रही है और वह नई बात है स्थानीय स्तर पर बजट बनाने की प्रक्रिया की शुरूआत। यह पंचायत को लोकतांत्रिक बनाने का भी एक जरिया हो सकता है। पर यह तभी हो सकता है जबकि आम जनता इसमें भाग ले । और एक प्रकार की पारदर्शिता भी हो तो हमारे विकास का रास्ता खुलेगा। शिक्षा नीति में सिविल सोसाइटी (नागरिक समाज) की भागीदारी जरूरी है । इसके अलावा यह सवाल प्रशासन से भी जुड़ता है क्योंकि आप केवल शिक्षा के लिए ही सत्ता का विकेन्द्रीकरण नहीं करेंगे। बल्कि सभी अन्य बातों के लिए भी मसलन रोजी-रोटी के लिए, सामाजिक सुरक्षा के लिए भी विकेन्द्रीकरण की बात करेंगे। इसलिए यह सवाल दो-तीन दिशाओं से आ रहा है। एक तो भूमंडलीकरण की तरफ से आ रहा है। इस प्रक्रिया में गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र हिल रहा है । दूसरी दिशा है शिक्षा में गुणवत्ता के सवाल को समानता के सवाल से जोड़कर देखना, दक्षता एवं गुणवत्ता के साथ देखना तथा शिक्षा में परिमाणात्मकता को गुणवत्ता के साथ जोड़कर देखना। यानी शिक्षा में गुणवत्ता को समानता, दक्षता एवं परिमाणात्मकता से अलग करके नहीं देखना। तीसरी दिशा है शिक्षा संबंधी योजना एवं उसके क्रियान्वयन में जनता की भागीदारी। मेरा मानना है कि हर तरह के स्कूलों में स्थानीय जनता की भागीदारी होनी चाहिए। चाहे वह सरकारी स्कूल हो अथवा निजी स्कूल हो अथवा किन्ही गैर-सरकारी प्रयासों से चलने वाले स्कूल हों।

दूसरी दिशा है शिक्षा में गुणवत्ता के सवाल को समानता के सवाल से जोड़कर देखना, दक्षता एवं गुणवत्ता के साथ देखना तथा शिक्षा में परिमाणात्मकता को गुणवत्ता के साथ जोड़कर देखना। यानी शिक्षा में गुणवत्ता को समानता, दक्षता एवं परिमाणात्मकता से अलग करके नहीं देखना। तीसरी दिशा है शिक्षा संबंधी योजना एवं उसके क्रियान्वयन में जनता की भागीदारी। मेरा मानना है कि हर तरह के स्कूलों में स्थानीय जनता की भागीदारी होनी चाहिए। चाहे वह सरकारी स्कूल हो अथवा निजी स्कूल हो अथवा किन्ही गैर-सरकारी प्रयासों से चलने वाले स्कूल हों।

राघवेन्द्र : *दक्षिण एशियाई देशों की स्कूली पाठ्यचर्या पर यह आक्षेप है कि यहां की पाठ्यचर्या एवं पाठ्यपुस्तकें जीवंत सामाजिक सरोकारों तथा विद्यार्थियों के सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण से कटी हुई हैं। इस तरह उनमें स्थानीयता का अभाव अक्सर पाया जाता है। इस प्रकार के आक्षेप पर आपकी क्या टिप्पणी है?*

जलालुद्दीन : कई अध्ययनों से यह उभर रहा है कि दक्षिण एशियाई देशों में चलने वाली प्राथमिक शिक्षा की पाठ्यचर्या ठीक नहीं है। प्रोब रिपोर्ट तथा दक्षिण एशिया के शैक्षिक हालात पर 1998 में आई ह्यूमन डेवलपमेन्ट रपट (ह्यूमन डेवलपमेन्ट इन साउथ एशिया 1998) से इस बात की पुष्टि होती है कि दक्षिण एशिया की स्कूली पाठ्यचर्या जीवन की स्थितियों से मेल नहीं खाती । इसका एक कारण यह है कि इस क्षेत्र में स्कूली पाठ्यचर्या उच्च अध्ययन की ओर झुकी हुई है । और दूसरी बात यह है कि स्थानीय पाठ्यचर्या की अवधारणा प्राथमिक शिक्षा में अभी अपने लिए कोई जगह नहीं बना पाई है। पाठ्यचर्या निर्धारण-प्रक्रिया में ऐसी संभावना अभी नहीं बन पाई है जिससे कि वह स्थानीय परिस्थिति को अपने अंदर समेट सके। हमारे यहां की औपचारिक शिक्षा काफी रूढ़ एवं गैर लचीली है। यहां की पाठ्यचर्या अधिकतर ऐसे लोग तैयार करते हैं जिनका बच्चों की शिक्षा पर काम करने का कोई सीधा एवं लम्बा अनुभव नहीं है। चूंकि पाठ्यचर्या तथा पाठ्यपुस्तकें बच्चों को पढ़ने-पढ़ाने की वास्तविक अभ्यास क्रियाओं के बीच से उभरी नहीं होतीं इसलिए अच्छी से अच्छी पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकें स्कूल के वास्तविक जगत में आकर असहाय साबित हो जाती हैं। इसलिए जरूरी यह है कि पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकें वास्तविक कक्षा अध्यापन तथा बच्चों के साथ होने वाले वास्तविक अनुभवों के बीच से विकसित की जाएँ और उन्हें उन लोगों की व्यापक भागीदारी से विकसित किया जाए जिनका वास्ता सीधे-सीधे बच्चों की दुनिया से होता है।

राघवेन्द्र : *प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में जो शिक्षाशास्त्रीय बर्तावों की चर्चा अथवा अनुभव सामने आते हैं और उनसे शिक्षक एवं छात्र के बीच आपसी रिश्ते की जो तस्वीर बनती है वह आश्वस्तकारी नहीं दिखती। साथ ही साथ शिक्षार्थियों के संबंध में शिक्षकों की मूलभूत अवधारणा (जो कि विभिन्न अवसरों पर विभिन्न रूपों में सामने आती है) भी संतोषकारी नहीं जान पड़ती। आपकी राय में इस रिश्ते की दशा-दिशा क्या है? क्या भविष्य में इस स्थिति के बदलने के कोई चिह्न या आसार नजर आ रहे हैं ?*

जलाजुद्दीन : एक और महत्वपूर्ण आयाम है शिक्षक एवं छात्र के बीच समता मूलक संबंध के अभाव का। इस तरह की शिक्षण परिस्थिति में बच्चा खुल के बोल नहीं पाता। अपना अनुभव, अपनी सोच, अपनी प्रतिक्रिया और भावनाएँ व्यक्त नहीं कर सकता । शिक्षा-व्यवस्था में अभी यह बुनियादी बात स्वीकृत ही नहीं हुई है कि बच्चा सोच भी सकता है। अभी हमारी यह समझ बनी ही नहीं है कि बच्चा कैसे सीखता है। बच्चों का व्यवहार, उनकी प्रकृति तथा सीखने का तौर-तरीका और उनके विकास के संबंध में हमारी समझ ज्यादातर पश्चिमी जगत की समझ की ओर झुकी हुई है । विडम्बना है कि हमारे यहां अपने अनुभव से निकली हुई समझ का कोई विकास नहीं हो पाया है। शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त बच्चों के मनोविज्ञान तथा उससे जुड़े हुए समाजीकरण की समझ के अभाव को हम किसी निर्देश, प्रशिक्षण, औपचारिक शिक्षण के जरिये दूर नहीं कर सकते । कहने का मतलब यह है कि वास्तविक व जमीनी समझ कभी किसी कृत्रिम वातावरण में पैदा नहीं की जा सकती है । ऐसी समझ तो वास्तविक स्थितियों में बच्चों के बीच काम करते हुए इस बीच उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों एवं चुनौतियों से जूझते हुए, असफल होते हुए तथा अपनी असफलताओं से सीखने की हिम्मत एवं जिज्ञासा रखते हुए ही विकसित हो सकती है । बच्चों के साथ काम करते हुए आप यह जान सकते हैं कि बच्चे कैसे सवाल हल करते हैं। अधिकांश बच्चे कैसा सवाल पूछते हैं, कौनसे सवाल बच्चे वैयक्तिक स्तर पर पूछते हैं। इस तरह एक शिक्षक यह जान पाता है कि कौन-सी चीजें बच्चे आसानी से सीखते हैं तथा किनमें वे कठिनाई महसूस करते हैं। इस तरह शिक्षक यह जान पाता है कि बच्चे किस तरह की भाषा समझते हैं। इस समझ के आधार पर शिक्षक विद्यार्थियों के साथ बर्ताव के क्रम में अपनी भाषा में तद्नुरूप बदलाव भी लाता है। पर एकरूपी (यूनिफार्म)शिक्षण के तरीके से बच्चों को पढ़ाने से ऐसा अनुभव बनने की कोई गुंजाइश नहीं होती है । एकरूपी शिक्षण से शिक्षक तभी मुक्त हो पाएगा जब वह यह यकीन करने लगे कि बच्चे सोच सकते हैं । शिक्षकों को यह विश्वास किसी

सिद्धांत एवं दर्शन के द्वारा नहीं आएगा बल्कि जब वे रूढ़ एवं गैर लचीली चौखट से बाहर निकलकर बच्चों के साथ धरातल पर काम करेंगे, उससे जो अनुभव पैदा होगा वही उन्हें यह विश्वास दिला सकेगा कि बच्चे सोच भी सकते हैं। एकरूपी शिक्षण के बरक्स मैंने छोटे समूह शिक्षण की वकालत हमेशा की है। इसके पीछे मान्यता यह है कि एक ही बात एक ही तरीके से सभी बच्चों को एक साथ नहीं कही जा सकती है। इसलिए उन्हें छोटे-छोटे समूह में बांटकर शिक्षण करना एक कारगर शिक्षणविधि हो सकती है। मेरा यह जमीनी अनुभव है कि छोटे-छोटे समूहों में बांटकर शिक्षण कार्य करते हुए शिक्षक बच्चों को होने वाली कठिनाइयों को समझ पाते हैं और उनके अनुरूप अपने व्यवहार और भाषा में परिवर्तन करते हैं। मैंने ऐसा कई राज्यों में प्रयोग करके इसकी सफलता एक हद तक देखी भी है । बांग्लादेश में 162 स्कूल, भारत में रामकृष्ण मिशन के 38 तथा पश्चिम बंगाल के स्कूलों में ऐसी गतिविधि (छोटी टोली शिक्षक) का अनुभव सकारात्मक मिला है। इन जगहों पर जब यह कार्यक्रम एक साल चल चुका तो पृष्ठ पोषण के लिए शिक्षकों की बैठक बुलाई गई । उनसे जब यह पूछा गया कि, ''इस साल के अनुभव को एक ही वाक्य में बतलाइए तो सभी शिक्षकों ने एक ही बात कही कि हमारे विश्वास में परिवर्तन आ गया है। जो हम पहले यह सोच नहीं पाते थे कि सभी बच्चे सीख सकते हैं वह आज हम इस कार्यक्रम के बाद यह विश्वास करने लगे हैं कि सभी बच्चे सीख सकते हैं।''

अफसोस की बात यह है कि हमारी औपचारिक शिक्षक-प्रशिक्षक- संस्थाएं बहुत रूढ़ हैं। इन संस्थाओं के शिक्षक-प्रशिक्षक कभी गांव में वास्तविक कक्षा-अध्यापन की परिस्थिति में उनके साथ बैठकर यह देखने की कोशिश नहीं करते कि बच्चे कैसे अलग-अलग रफ्तार से, अलग-अलग स्तर पर सीख सकते हैं।

फिलहाल शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में कुछ परिवर्तन आ रहा है। इसमें तकनीक का भी एक स्थान है । पर इस वक्त तकनीक की बात छोड़ दें, संसाधनों की बात भी थोड़े समय तक स्थगित कर दें तो सबसे महत्वपूर्ण बात ध्यान देने की यह है कि शिक्षक का बुनियादी चरित्र बदलना चाहिए। हमारा स्कूली शिक्षण आज वयस्क वर्चस्व वाला है जबकि वयस्क की भूमिका यहां केवल सुविधा मुहैय्या करवाने वाले की होनी चाहिए थी। जरूरत है हमारी शिक्षा के सन्दर्भ को बदलने की यानी वयस्क केन्द्रीयता की जगह विद्यार्थी केन्द्रीयता को कायम करने की।

राघवेन्द्र : *पाठ्यपुस्तकों का चरित्र, शिक्षकों की शिक्षणशास्त्रीय मान्यताओं, विश्वासों एवं धारणाओं और शिक्षार्थियों के बीच पाए जाने वाले त्रिकोणीय जटिल रिश्ते को आप कैसे देखते हैं ?*

जलालुद्दीन : एक बात जो हमेशा सुनने को मिलती है कि पाठ्यचर्या खराब है, पाठ्यपुस्तकें ठीक नहीं हैं, उन्हें बदल देना चाहिए और उनकी जगह नई किताबें चाहिए। इस संबंध में हमारा मानना है कि हमें नई किताबें तो चाहिए, पर अभी कुछ देर के लिए पुरानी किताबों को ही नए तरीके से पढ़ाइए, तभी आपको पता चल सकेगा कि आपको नया क्या चाहिए । शिक्षण की प्रभावशीलता एवं सफलता केवल नई पाठ्यचर्या एवं पाठ्यपुस्तक से ही तय नहीं होती बल्कि वह पढ़ाने के नए उपागम से भी गहरे तौर पर प्रभावित होती है। अगर यह उपागम नहीं बदले तो बदली हुई किताबों को भी शिक्षक पुराने ही ढंग से पढ़ाने लगेगा और किताबों का नयापन धरा का धरा रह जायेगा। असल मामला यह है कि हर बार जो नई किताबें तैयार होती हैं वह विशेषज्ञों के द्वारा तैयार की जाती हैं, उनमें वास्तविक शिक्षक के अनुभव शामिल नहीं हो पाते। ऐसे हालात में नई किताबें भी कारगर नहीं हो पातीं।

शिक्षकों की चेतना को प्रभावित करने तथा उसे बदलने में एक हद तक कामयाब एक कार्यक्रम का जिक्र यहां करना चाहूंगा। इस कार्यक्रम का नाम है कम्यूनिटी लर्निंग असिस्टेंड प्रोग्राम। इसका अवधारणात्मक नाम रखा गया है 'चाइल्ड सेन्टर्ड कम्यूनिटी डेवलपमेन्ट', इसके केन्द्र में बच्चों एवं समुदाय को रखा गया है। कार्यक्रम का एक उद्देश्य है बच्चों के संबंध में शिक्षकों की धारणा में बदलाव लाना । समुदाय को यहां एक उत्प्रेरक शक्ति के रूप में रखा गया है। इस कार्यक्रम में समुदाय के साथ मिलकर बच्चों के बीच काम किया करते थे और शिक्षकों को आमंत्रित किया करते थे । जब शिक्षक उन्हीं बच्चों को कई अन्य मोर्चों पर भी अच्छा काम करते और प्रगति करते देखते तो उन्हें लगता था कि बच्चे अपने आप में नालायक नहीं हुआ करते हैं। वह अपने पढ़ाने के तौर-तरीकों पर भी पुनर्विचार करने लगते हैं और बच्चों के मूल्यांकन पर भी। अभी हमें रोज दिन में ई-मेल आते हैं

कि बच्चों का मूल्यांकन कैसे करें, आकलन का क्या तरीका होना चाहिए इत्यादि। शिक्षा की गुणवत्ता में परिवर्तन लाने के लिए अगर हम 'इनक्रिमेन्टल डेवलपमेन्ट उपागम' अपनाते हैं तो वांछित परिणाम आने तक इसमें बहुत समय लगेगा। अगर हम इस संबंध में क्रान्तिकारी ढंग से शिक्षकों तथा लोगों की चेतना में परिवर्तन लाने की कोशिश करें तो उसमें कम समय लगेगा । 'चाइल्ड सेन्टर्ड कम्यूनिटी डेवलपेंट प्रोग्राम' इस क्रान्तिकारी परिवर्तन का एक वाहक है। इसमें शिक्षक-प्रशिक्षक, अभिभावक एवं समुदाय जो भी शिक्षक इस प्रोग्राम से गुजरता है उनका एक आपसी गठजोड़ बन जाता है और वे यह कहने लगते हैं कि अब समझ में आ रहा है कि शिक्षा कैसी होनी चाहिए। यह कार्यक्रम अलग-अलग नाम से बांग्लादेश, पश्चिम बंगाल में चला और अभी आसाम में चल रहा है। इस कार्यक्रम में पाठ्यचर्या मैपिंग, पाठ्यक्रम मैपिंग का भी काम किया जाता है । यानि पाठ्यक्रम में दिए गए ज्ञान को सभी स्तरों पर एक-दूसरे से जुड़े हुए रूप में देखना। यह जुड़ाव मुख्यतया दो स्तरों पर दिखाया जाता है । विषयगत स्तर पर और भाषागत स्तर पर । जो शिक्षक छः महीने ऐसे कार्यक्रमों से जुड़ता है उसकी चेतना में बदलाव आ जाता है और इसी तरह के चेतना बदलाव के आधार पर गुणवत्ता वाली शिक्षा को लाने के प्रति हम आश्वस्त हो सकते हैं ।

दक्षिण एशिया में शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाएं बहुत संकीर्णतावादी, पुरातनपंथी एवं रूढ़ हैं। उन्होंने शिक्षक-प्रशिक्षण के अंगों, उपांगों मसलन इम्तिहान, अध्यापन जैसी चीजों के मायने तय कर रखे हैं और उनमें परिवर्तन के लिए वे तैयार नहीं होते । जबकि चीन के संबंध में मेरा अनुभव अलग है। एक बार जब उन्होंने यह कार्यक्रम देखा तो सुखद आश्चर्य के साथ कहा, अरे ! यह तो हम चीन में भी कर सकते हैं। दक्षिण एशिया का शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम अन्य क्षेत्रों से भिन्न है। दक्षिण एशिया में काम चीजों को संरक्षित करने के लिए किया जा रहा है जबकि पश्चिम में परिवर्तन के लिए काम किया जा रहा है। पुराने को ही करते रहने और उसे बचाए रखने की जो कोशिश दक्षिण एशिया में है उसे बदलने की जरूरत है। और यह बदलाव तभी आएगा जब शिक्षकों की चेतना में बदलाव आएगा। इस चेतना के नहीं बदल पाने की वजह से लोगों को यह मुश्किल से समझ आता है कि वस्तुतः बच्चों के सशक्तिकरण की आवश्यकता है। पर अधिकांश लोग शिक्षक सशक्तीकरण की बात करते हैं।

राघवेन्द्र : *उच्च शिक्षा की संस्थाओं तथा स्कूली शिक्षा जगत की संस्थाओं में बदस्तूर कायम असंवाद को आप कैसे देखते हैं ?*

जलालुद्दीन : एक और तरह की संकीर्णतावादी प्रवृत्ति से हमारी शिक्षा व्यवस्था ग्रस्त है, वह प्रवृत्ति है विश्वविद्यालय व उच्च शोध संस्थाओं का प्राथमिक शिक्षा संस्थाओं के साथ अलगाव। ज्ञान सर्जन में लगी उच्च शिक्षा की संस्थाएं प्राथमिक शिक्षा के प्रति, उनके प्रशिक्षकों के प्रति अपनी कोई जिम्मेवारी नहीं मानती हैं । जबकि उन्हें शिक्षक-विकास के लिए थोड़ा समय देना चाहिए। यह केवल 1960-70 का दशक ही था कि कुछ विश्वविद्यालयों ने विस्तार सेवा (एक्सटेंशन सर्विस) शुरू की। चूंकि हमारी शिक्षा अपने ढांचे में ब्रिटिश ढांचे का पालन करती रही इसलिए विस्तार सेवाएं इतनी देर से भारतीय विश्वविद्यालयी शिक्षा का हिस्सा बनी। कारण साफ था कि ऐसा अनुभव ब्रिटिश को नहीं था।

राघवेन्द्र : *गुणवत्ता वाली प्राथमिक शिक्षा सुनिश्चित हो, इस संदर्भ में एक शिक्षक से क्या अपेक्षा की जानी चाहिए ?*

जलालुद्दीन : प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता के संदर्भ में तीन बातें महत्वपूर्ण हैं। पहली यह कि वस्तुनिष्ठ स्थिति को बदलो। दूसरी यह कि इसी वस्तुनिष्ठ स्थिति के बदलाव से बच्चे बदलेंगे तथा तीसरी यह कि बच्चों को बदलते हुए देखकर शिक्षक बदलेंगे । प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए टीचिंग लर्निंग मैटीरीयल (टी. एल. एम.) का यह जो आन्दोलन चला है वह बहुत कामयाब नहीं है। टी.एल. एम. के नाम पर मॉडल दिखाए जाते हैं। उनमें बच्चों की रूचि एवं समय की जरूरतों का ख्याल नहीं रखा जाता है। जबकि बच्चों की सीखने की आवश्यकताएं अलग-अलग परिस्थितियों में बदलती रहती हैं। पर टी.एल.एम. पर दिया जाने वाला जोर इस

तथ्य को ध्यान में नहीं रख पाता । ऐसे में होता यह है कि शिक्षक टी.एल.एम. से कुछ चीजें चुनकर कक्षा में 'जादू' दिखाने की ओर बढ़ जाते हैं । इसमें होता यह है कि शिक्षक का ध्यान बच्चों से उठकर टी.एल.एम. की ओर चला जाता है। शिक्षण के संबंध में लक्ष्य का ध्यान हमेशा रखा जाना चाहिए। पहले तो आप यह सोचें कि इस समय बच्चे क्या कर सकते हैं, क्या सोच सकते हैं । फिर इसके आधार पर यह कल्पना कीजिए कि आज से एक महीने बाद या एक हफ्ते बाद बच्चे क्या कर पायेंगे और क्या सोच पायेंगे । फिर यह सोचिए कि क्या करने से बच्चे ऐसा कर पाएंगे। उसके बाद यह सोचिए कि इसके लिए क्या संसाधन चाहिए। इसमें यह भी सोचने की बात है कि बच्चे अभी क्या नहीं कर पा रहे हैं और क्या करने पर वे यह नहीं कर पाएंगे। आज शिक्षा में एक तरह का 'इनपुट' उपागम है जिसमें शिक्षक यह मान लेता है कि मेरा काम तो मैंने कर दिया अब बच्चे नहीं सीख पा रहे हैं तो इसमें बच्चे दोषी हैं, हम नहीं । सोचने का जो यह 'इनपुट' उपागम है, उसमें हमें बदलाव लाना होगा। हमारा काम तो हमने कर दिया और अगर परिणाम नहीं आ रहा तो उसमें हमारा कोई दोष नहीं है । असफलता या गलती हमसे कहीं दूर किसी और में है - यह इनपुट उन्मुखीकृत उपागम न केवल शिक्षकों में व्याप्त है बल्कि संपूर्ण प्रशासनिक ढाँचे में भी गहरे रूप से अपने पांव जमाए हुए है। इसमें यह सोचा नहीं जाता कि हमारा लक्ष्य क्या है और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए क्या स्थिति चाहिए और हमें क्या करना चाहिए । इस तरह की 'आउट कम' जवाबदेही का अभाव हमारे शिक्षा जगत में देखा जाता है । बच्चों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक क्षेत्र में दुनिया भर में किए गए शोध ने एक हद तक मोटे तौर पर यह बता देने का काम जरूर किया है कि किस उम्र में क्या विकास होना चाहिए। मसलन पांच, सात और नौ वर्ष में क्या विकास होना चाहिए। फिर ऐसी स्थिति में आप यह नहीं कह सकते कि बच्चा नहीं सीख सकता या नहीं सीख रहा । क्योंकि स्थापित सिद्धांत के अनुसार मोटे तौर पर सभी बच्चे सीखते हैं और उनका विकास होता है। उनके स्थानीय परिवेश अलग हो सकते हैं, उनकी शब्दावली भिन्न हो सकती है। ऐसी स्थिति में आप उसी के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य तय कीजिए और वही सिखाइए, उसी का मूल्यांकन कीजिए । परन्तु इन सभी बातों पर बहस नहीं की जा सकती। इन पर आलोचनात्मक तरीके से नहीं सोचा जाता। यह माना जाता है कि गुणवत्ता लानी है तो ज्यादा पैसे खर्च करो, ज्यादा शिक्षक-प्रशिक्षण दो और ज्यादा टी.एल.एम. तैयार करो । इस तरह प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता के संदर्भ में मुख्य अवधारणाओं पर बात नहीं की जाती बल्कि परिधि पर रहने वाली चीजों पर ज्यादा बात की जाती है।

राघवेन्द्र : *प्राथमिक शिक्षा में संसाधनों की कमी को बतौर चिंता लगातार दर्ज कराया जाता रहा है। प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता को गहराई से प्रभावित करने वाले कारकों की सूची में इसे काफी वरीयता दी जाती है । प्राथमिक शिक्षा में संसाधनों की कमी एवं गुणवत्ता के आपसी रिश्ते पर आपकी क्या टिप्पणी है ?*

जलालुद्दीन : सन् 1998 में जब दक्षिण एशिया में मानव विकास की रपट पर चर्चा चल रही थी उस समय पूर्व वित्त मंत्री मनमोहन सिंह भी इस चर्चा में शिरकत कर रहे थे। तब बहुत सारे भागीदार उनसे बार-बार यह कह रहे थे कि गुणवत्ता के लिए प्राथमिक शिक्षा में पैसे बढ़ाओ, पैसे की कमी की वजह से प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता नहीं आ पा रही है। अगर प्राथमिक शिक्षा क्षेत्र में पर्याप्त धन का संसाधन हो तो प्राथमिक शिक्षा को गुणवत्ता वाली शिक्षा में तब्दील किया जा सकता है। पर मैंने उस समय इन टिप्पणियों, रायों से भिन्न बात दर्ज की। मैंने कहा कि प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता का मामला पैसे तक सीमित नहीं है। अगर हमारे शिक्षक-प्रशिक्षण, शिक्षक तथा अध्ययन-अध्यापन और बच्चों की क्षमताओं, योग्यताओं के संबंध में विचार दुरस्त नहीं हैं, गलत हैं तो इन स्थितियों के बरकरार रहते ज्यादा पैसे उपलब्ध करवाने पर होगा यही कि ज्यादा पैसे से ज्यादा गलत काम होगा । पैसों की कमी को सबसे महत्वपूर्ण कारण स्वीकारे जाते समय पैसा प्रबंधन की कुव्यवस्था का सवाल भी उठाया जाना चाहिए। अक्सर हम देखते हैं कि विभिन्न चरणों में जब पैसा चाहिए होता है तब उस समय वह पैसा केवल कुप्रबंधन की वजह से उपलब्ध नहीं होता । जबकि उस चरण में होने वाले काम के लिए वांछित पैसे का बजट में प्रावधान होता है । इस तरह जब हम परिवर्तन और सुधार की बात करते हैं, पारदर्शिता की बात करते हैं तो हमें सभी क्षेत्रों में, सभी स्तरों पर सवाल उठाना चाहिए और उसमें सुधार की बात करनी चाहिए। निश्चित रूप में उसमें कुप्रबंधन का मुद्दा भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। ◆